अथ योगानुशासनम् ॥१॥

अब योगशास्त्र आरम्भ हुआ ॥ १ ॥

अथेत्ययमधिकारार्थः। योगानुशासनं शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम्। योगः समाधिः; स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्मः। क्षिप्तं, मूढं, विक्षिप्तमेकाग्रं, निरुद्धमिति चित्तभूमयः। तत्र विक्षिप्ते चेतसि विक्षेपोपसर्जनीभूतः समाधिर्न योगपक्षे वर्तते। यस्त्वेकाग्रे चेतसि सद्भूतमर्थं प्रद्योतयति, क्षिणोति च क्लेशान्, कर्मबन्धनानि श्लथयति, निरोधमभिमुखं करोति, स सम्प्रज्ञातो योग इत्याख्यायते। स च वितर्कानुगतो, विचारानुगत, आनन्दानुगतोऽस्मितानुगत इत्युपरिष्टात्प्रवेदयिष्यामः। सर्ववृत्तिनिरोधे त्वसम्प्रज्ञातः समाधिः ॥१॥

यह **'अथ'** शब्द अधिकार-वाचक है। (अब) योगानुशासन अर्थात् **'योगशास्त्र'** अधिकृत (आरम्भ हुआ) जानना चाहिए। योग समाधि है और यह (समाधि) (चित्त की) सभी भूमियों में रहने वाला चित्त का धर्म है। क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध—चित्त की ये पाँच भूमियाँ होती है। (चित्त की इन पाँचों भूमियों में रहने वाला धर्म, चित्त का 'सार्वभौम' धर्म कहा गया है।) इन भूमियों में से विक्षिप्त-भूमि वाले चित्त की समाधि, विक्षेप के कारण गौण हो जाने से योग की कोटि में नहीं आती। जो समाधि एकाग्र-भूमि वाले चित्त में (संभव) होती है; तथा (आलम्बन रूप से बुद्धि में) स्थित पदार्थ को पूर्णतया प्रकाशित करती है; (अविद्यादि सभी) क्लेशों को नष्ट करती है; कर्म-संस्कारों को प्रशिथिल (कार्याक्षम) करती है और असम्प्रज्ञातसमाधि को सामने लाती है, वह (समाधि) सम्प्रज्ञातयोग कही जाती है। और वह (सम्प्रज्ञात योग) वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत तथा अस्मितानुगत (इन चार अवस्थाओं वाला) होता है—यह आगे स्पष्ट रूप से बताएँगे। सभी वृत्तियों का निरोध होने पर तो असम्प्रज्ञात-समाधि होती है (वही असम्प्रज्ञात योग है)। १।

Scanned with CamScanner

यद्यपि **'अथ'** शब्द मङ्गलार्थक होता है, परन्तु यहाँ पर इसका वाच्यार्थ **'मङ्गल'** नहीं है। यहाँ पर 'अथ' शब्द अधिकारवाचक है। अधिकार किसे कहते हैं ? **'अधिकार-शब्दो योगरूढतया आरम्भण एव मुख्य इति'**।[२] आशय यह है कि अब योगानुशासन अर्थात् योगशास्त्र अधिकृत हुआ है या अब यहाँ से योगानुशासन का अधिकार है। तात्पर्य यह है कि अब योगानुशासन नामक शास्त्र का आरम्भ हुआ। अब प्रश्न यह है कि यदि 'अथ' शब्द का प्रयोग यहाँ अधिकार अर्थात् आरम्भ के अर्थ में हुआ है तो इसका वाच्यार्थ मङ्गल नहीं हो सकता, फिर इस स्थल पर इस शब्द से माङ्गलिकता का बोध कैसे होगा ? इसका उत्तर यह है कि यहाँ पर 'अथ' शब्द का प्रयोग मङ्गलार्थक न होने पर भी केवल श्रूयमाण होने से ही यह 'अथ' शब्द मङ्गलकारी हो गया है। जैसे—अन्य प्रयोजन से ले जाया जाता हुआ जलपूर्णकुम्भ, यात्राप्रसङ्ग में दर्शनमात्र से माङ्गलिक हो जाता है, वैसे ही अधिकार के अर्थ में प्रयुक्त होने पर भी 'अथ' शब्द श्रूयमाण होने से ही मङ्गलकारी या शुभकारी हो जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि 'अथ' शब्द इस सूत्र में अभिधावृत्ति से अधिकार या 'आरम्भ' का बोध कराता है और व्यञ्जनावृत्ति से मङ्गलमयता का। सच तो यह है कि 'अथ' शब्द को मङ्गलार्थक मानने पर उसकी उतनी माङ्गलिकता नहीं हो सकती, जितनी कि अन्यार्थक होने पर उसके उच्चारण-मात्र से उसकी माङ्गलिकता होगी। इस धारणा को पुष्ट करते हुए वाचस्पति मिश्र कहते हैं कि—**'अधिकारार्थस्य चाथशब्दस्यान्यार्थं नीयमानोदकुम्भदर्शनमिव श्रवणं मङ्गलायोपकल्पत इति मन्तव्यम्'**[३]।

Scanned with CamScanner

योगानुशासनम्—योगस्य अनुशासनम् इति तथोक्तम्, योग का अनुशासन। इस समस्तपद में आये हुए दोनों पदों—'योग' एवं 'अनुशासन'—के अर्थ का स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए।

अनुशासनम्—अनुशिष्यतेऽनेन इति अनु + √शासु + ल्युट् करणे=अनुशासनम् 'शास्त्रम्' जिसके द्वारा अनुशासित किया जाय, सिखाया जाय, वह है अनुशासन अर्थात् शास्त्र। इस प्रकार 'योगानुशासनम्' का अर्थ हुआ योगशास्त्र।

'अनुशासनमिति हि शास्त्रमाहानुशिष्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या।'[1]

'योगानुशासनं नाम शास्त्रं तद्द्वारा योगोऽपीत्यर्थः।'[2] विषय को विवेचित करके ज्ञापित करने का साधन या करण ही अनुशासन या शास्त्र कहा जाता है।

'शास्त्र' की परिभाषा है—

'प्रवृत्तिर्वा निवृत्तिर्वा नित्येन कृतकेन वा।
पुंसां येनोपदिश्येत तच्छास्त्रमभिधीयते॥[3]

पतञ्जलि ने महाभाष्य में 'अनुशासन' शब्द का 'शास्त्र' ही अर्थ किया है।

'शब्दानुशासनं नाम शास्त्रमधिकृतं वेदितव्यम्।'[4] नागोजिभट्ट ने लिखा है—**'अनुशिष्यन्ते (असाधुशब्देभ्यो) विविच्य ज्ञाप्यन्तेऽनेनेति करणल्युडन्ततया शास्त्रपदेन सामानाधिकरण्यमिति भावः। इदमेव ध्वनयितुं भाष्ये नामपदोपादानम्। नाम-नामिनोरभेदात् 'नाम-शास्त्रम्' इति सामानाधिकरण्यम्'**[5]। अनुशासन पद का अर्थ शास्त्र है—इस बात को टीकाकार वैद्यनाथ भी कहते हैं—**'अनुपूर्वकशासेर्विविच्यज्ञापने दृष्टत्वस्यान्यत्र प्रसिद्धत्वात्'**[6]।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हुआ कि योगशास्त्र का आरम्भ हुआ या योगशास्त्र अधिकृत हुआ। यहाँ पर यह शङ्का उठायी जा सकती है कि व्युत्पाद्य या विज्ञाप्य विषय 'योग' है न कि 'योगशास्त्र'। इस शङ्का को मिटाने के लिए ही भाष्यकार व्यास—कदाचित् पतञ्जलि के 'महाभाष्य' का अनुसरण करते हुए लिखते हैं—**'योगानुशासनं शास्त्रम् अधिकृतं वेदितव्यम्।'**—यो० भा० पृ० १।[7]

Scanned with CamScanner

यह 'वेदितव्यम्' पद योगशास्त्र के अधिकृतत्व का निश्चय कराने के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। योगशास्त्रव्यापारगोचरतया अर्थात् योगशास्त्र के प्रतिपाद्य विषय होने के कारण 'योग' भी व्युत्पाद्य रूप में आरम्भ हो गया।[1]

इस प्रकार योगानुशासनम् का अर्थ हुआ योगविषयक या योगप्रतिपादक शास्त्र। 'योग' हुआ प्रतिपाद्य विषय और 'योगानुशासन' हुआ योग का प्रतिपादक शास्त्र।

इस प्रकार इस सूत्र में महर्षि पतञ्जलि के द्वारा जिज्ञासुओं को सरलता से योग का ज्ञान कराने के लिए योगशास्त्रारम्भ की प्रतिज्ञा की जा रही है।

एक बात यहाँ पर और ध्यान देने की है। वह यह कि यद्यपि 'अनुशासन' और 'शास्त्र' शब्द पर्यायवाची हैं, फिर भी बहुप्रचलित 'शास्त्र' शब्द का प्रयोग न करके सूत्रकार ने 'अनुशासन' शब्द का प्रयोग क्यों किया है? सूत्रकार का प्रयोजन स्पष्ट है कि वे 'अनुशासन' शब्द की इस व्यञ्जना से कि—**'शिष्टस्य शासनम् इत्यनुशासनम्'** अर्थात् पहले से सिखाए गए विषय को सिखाने वाला शास्त्र अनुशासन है—यह प्रकट करना चाहते हैं कि योगशास्त्र के आदिवक्ता वे नहीं हैं;[2] प्रत्युत **'हिरण्यगर्भो योगस्य वक्ता नान्यः पुरातनः'**—इस वाक्य में योगियाज्ञवल्क्य द्वारा विदित 'हिरण्यगर्भ' अर्थात् 'कपिल'[3] हैं। पतञ्जलि तो उसका पुनः प्रवचन या प्रकाशन मात्र कर रहे हैं।

योग—यह 'योग' शब्द युज् (समाधौ) धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगाकर बना है। इस योग शब्द की व्युत्पत्ति 'घञ्' प्रत्ययान्त √युजिर् योगे धातु से नहीं हो सकती, क्योंकि उस योग शब्द का अर्थ होगा 'जोड़' या 'योगफल'। यहाँ पर योग पद से 'जोड़ना' अर्थ लेने पर योग के वक्ष्यमाण लक्षण से विरोध होगा। इसलिए इस योग शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—(चित्तवृतिनिरोधरूप) समाधि। √'युज-समाधौ' धातु से + 'घञ्' प्रत्यय। व्यवहार में 'समाधि' शब्द योग से अधिक व्यापक है। वह सभी भूमियों में कमोबेश रहने वाला धर्म है। इसीलिए

Scanned with CamScanner

उसे चित्त का सार्वभौम धर्म कहते हैं। जब कि 'योग' चित्त का सार्वभौम धर्म नहीं है। वह केवल चित्त की दो भूमियों में रहने वाला धर्म है—'एकाग्र' भूमि में और 'निरुद्ध' भूमि में। इस प्रकार प्रत्येक समाधि योग की श्रेणी में नहीं रखी जा सकती, जबकि प्रत्येक योग समाधि के अन्तर्गत है। यह भेद ऐसे समझना चाहिए, जैसे—सभी मनुष्य जीव हैं, किन्तु सभी जीव मनुष्य नहीं हैं। आचार्य वाचस्पति मिश्र ने भाष्यस्थ 'स च' शब्द का अभिप्रेतार्थ 'समाधि' न लेकर 'योग' लिया है—

'सार्वभौमश्चित्तवृत्तिनिरोधलक्षणो 'योगः' तावङ्गं तु समाधिनवम्भूतः।'[1]

और इस कारण वे बड़े पचड़े में पड़ गए हैं। पहली गड़बड़ी तो यह हुई कि उनका अर्थ भाष्य-विरुद्ध हो गया, और दूसरी यह कि वे अपनी इस व्याख्या को तमाम प्रयत्नों के बावजूद सिद्ध नहीं कर पाये। उन्होंने भाष्यकार को (इस प्रसङ्ग में) अनभीष्ट 'मधुमती' 'मधुप्रतीका' 'विशोका' और 'संस्कारशेषा' नामक भूमियाँ कल्पित की हैं, और समाधि को योग का आठवाँ अङ्ग कहकर व्याख्यात किया है। किन्तु यहाँ पर योगाङ्ग के रूप में समाधि का वर्णन मानना ठीक नहीं है, क्योंकि जब 'योग' का ही परिचय दिया जा रहा है तो उसका अर्थ बोध कराने के लिए केवल उसके अङ्ग का ही वर्णन करना ठीक नहीं है। यहाँ पर तो समाधिसामान्य के द्वारा ही योग का प्रथम परिचय कराया जा सकता है।

(भा० सि०)—इस सूत्र से लेकर चौथे पाद के अन्तिम सूत्र पर्यन्त—इस सम्पूर्ण योगशास्त्र का भाष्य प्रारम्भ करते हुए भाष्यकार व्यास कहते हैं कि **'अथ इति अयम् (शब्दः) अधिकारार्थः'**—इस सूत्र में आया हुआ यह 'अथ' शब्द अधिकारार्थक है अर्थात् आरम्भवाची है, और आरम्भार्थ में उच्चारित होकर मङ्गलव्यञ्जक भी है।

योगस्य अनुशासनम् इति योगानुशासनम्—योगानुशासन नामक। शास्त्रम्—शास्त्र। अधिकृतम्—आरब्धम्, प्रारम्भ हुआ। वेदितव्यम्—जानना चाहिए। 'शिष्यैरिति शेषः'—शिष्यों या जिज्ञासुओं के द्वारा (यह वाक्य-शेष है)। अब योग क्या है ? भाष्यकार इसे समझाने के लिए 'योग' पद का व्याख्यान प्रारम्भ करते हैं कि—'योगः समाधिः' योग है समाधि। योग का अर्थ है समाधि। स च—और वह अर्थात् समाधि। चित्तस्य सार्वभौमः धर्मः—चित्त का सार्वभौम धर्म है। सार्वभौम का अर्थ है—सभी भूमियों में रहने वाला—सर्वासु भूमिषु विदितः [2]इति, सर्वभूमि+अण्[3]=

Scanned with CamScanner

सार्वभौमः धर्मः। ध्रियते इति धर्मः[1], व्यापारः, गुणः। निष्पन्न अर्थ हुआ 'चित्त की सभी भूमियों में रहने वाला धर्म या व्यापार'। भाष्यकार ने भाष्य में प्रयुक्त 'सार्वभौम' पद का व्याख्यान सम्पन्न करने के लिए चित्त की ये पाँच भूमियाँ बताई हैं—क्षिप्तादि···चित्तभूमयः—क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। इति—ये पाँच। चित्तभूमयः—चित्त की भूमियाँ या अवस्थाएँ हैं। इन पाँचों भूमियों का लक्षण यह है—

१. क्षिप्तम्—**'रजसा विषयेष्वेव वृत्तिमत्'**[2],—रजोगुण के उद्रेक के कारण विषयों में ही व्यापृत रहने वाली चित्त की अवस्था 'क्षिप्त' भूमि है।

२. मूढम्—**'तमसा निद्राविवृत्तिमत्'**[3]—तमोगुण के उद्रेक के कारण मूर्च्छादि-व्यापारवान् चित्त की स्थिति 'मूढ' भूमि कही जाती है।

३. विक्षिप्तम्—**'क्षिप्ताद्विशिष्टं विक्षिप्तं, सत्त्वाधिक्येन समादधदपि चित्तं रजोमात्रयाऽन्तराऽन्तरा विषयान्तरवृत्तिमद्'**[4]—क्षिप्तादि भूमि से कुछ बेहतर या अच्छी भूमि। इसमें सत्त्वगुणाधिक्य रहता है। इसमें किञ्चित्कालपर्यन्त समाधि लगने पर भी रजोगुण के जोर मारते रहने के कारण बीच-बीच में अन्य विषयों की ओर चित्त दौड़ जाता है। चित्त की यह अवस्था उसकी 'विक्षिप्त' नामक भूमि कही जाती है।

४. एकाग्रम्—**'एकस्मिन्नेव विषयेऽग्रं शिखा यस्य चित्तदीपस्येत्येकाग्रं, विशुद्ध-सत्त्वतयैकस्मिन्नेव विषये वक्ष्यमाणावधीकृतकालपर्यन्तमचञ्चलं निवातस्थदीपवत्। तथा च क्षिप्तादित्रयेऽपि किञ्चिदैकाग्र्यसत्त्वेऽपि तत्र नातिप्रसङ्गः।'**[5]

इस अवस्था में चित्त की सात्त्विकवृत्ति किसी एक विषय की ओर लगी रहती है। रजोगुण और तमोगुण दबे रहते हैं। अतः उस एक विषय की ओर अग्र या उन्मुख वृत्ति वाली अवस्था को 'एकाग्रभूमि' कहते हैं।

५. निरुद्धम्—**'निरुद्धं च निरुद्धसकलवृत्तिकं संस्कारमात्रशेषमित्यर्थः।'**[6]

Scanned with CamScanner

जिस अवस्था में चित्त की तामस और राजस वृत्तियों के साथ-साथ सात्त्विक वृत्ति का भी निरोध हो जाता है, केवल संस्कारमात्र चित्त में रहते हैं, उसे निरुद्ध भूमि कहते हैं।

तत्र—उन पाँचों भूमियों में (जिन सबमें यत्किञ्चित् वृत्तिनिरोधरूपी समाधि रह सकती है) से। विक्षिप्ते चेतसि—विक्षिप्तावस्था वाले चित्त में। विक्षेपोपसर्जनीभूतः समाधिः—विक्षेपेण रजोगुणकृतानुवेधेन, संक्षोभेण, उपसर्जनीभूतः तिरस्कृतः, न्यग्भावितः, खण्डितः, अभिभूतः 'गौणत्वम्, अनभिव्यक्ति वा' प्रापितः समाधिः। रजोगुण के अनुवेध के कारण गौण हुई या दब जाने वाली समाधि।

न योगपक्षे वर्तते—योग की कोटि में नहीं आती, योग के अन्तर्गत नहीं गिनी जाती।

'विक्षिप्त' भूमिकचित्तगत समाधि को योग की श्रेणी में नहीं गिना जा सकता, क्योंकि उसमें सर्वथा सुलभ विक्षेपों के कारण समाधि बार-बार गौण हो जाती है। यहीं उसका उपसर्जनीभाव या गौणत्व है। इसलिए इस काल की समाधि को योग नहीं कहा जाता। कैमुतिकन्याय से 'क्षिप्त' और 'मूढ' भूमि वाली समाधि का योगकोटि से भिन्नत्व तो सिद्ध ही है।[1] इसीलिए भाष्य में उन भूमियों की समाधि के योगत्व का प्रश्न ही नहीं उठाया गया।[2]

अब योग कही जाने वाली समाधियों का परिचय कराया जा रहा है। यः—जो समाधि। तु—तो। एकाग्रे चेतसि—एकाग्रभूमि वाले चित्त में, अर्थात् चित्त की एकाग्र भूमि में। 'वर्तमानः सन्' इति शेषः अर्थात् स्थित हो कर रहती हुई। सद्भूतमर्थम्[3]—अकल्पितम् अर्थात् वस्तुसत् ध्येय पदार्थ को। प्रद्योतयति[4]—पूर्ण रूप से प्रकाशित करती है। अर्थात् उसी ध्येय वस्तु का पूर्णतः साक्षात्कार कराती है। **'प्र शब्दो हि प्रकर्षं द्योतयन् साक्षात्कारं सूचयति।'**[5] क्षिणोति च क्लेशान्—क्लेशों को क्षीण करती है। दग्धबीज कर देती है। चूँकि क्लेश अविद्यामूलक होते हैं और

Scanned with CamScanner

'सम्प्रज्ञात', विद्या अर्थात् ज्ञान का शुद्धरूप है, इसलिए विद्या से अविद्या का क्षीण होना, दग्धबीज होना, जल जाना सर्वथा स्वाभाविक है। **'अविद्यामूलत्वादस्मितादीनां क्लेशानां विद्यायाश्च अविद्योच्छेदरूपत्वाद्विद्योदये चाविद्यादिक्लेशसमुच्छेदो विरोधित्वात् कारणविनाशाच्चेति[1]।'**

कर्मबन्धनानि—कर्माशयों अर्थात् कर्मसंस्कारों के बन्धनों को शिथिल कर देता है। इस जीवन में किए गए सभी कर्मों के संस्कार अदृष्ट फल देने में असमर्थ हो जाते हैं। केवल प्रारब्ध-कर्मों के संस्कारों का ही भोग होता रहता है। इस प्रकार कर्म-संस्कारों के भयङ्कर जाल का कसाव बिल्कुल ढीला हो जाता है। श्लथयति—'स्वकार्यादवसादयति', 'अदृष्टोत्पादनाक्षमाणि करोति', शिथिल कर देता है, फल देने की शक्ति को नष्ट कर देता है। निरोधम्—निरोधनामानं समाधिम्, असम्प्रज्ञात समाधि को, अभिमुखं करोति—अभिमुख करता है। निरोध समाधि को लाता है। **'अभिमुखं प्रत्यासन्नं करोति परवैराग्यजननेनेति शेषः[2]।'**

स (समाधिः) सम्प्रज्ञातो योगः—वह समाधि 'सम्प्रज्ञातयोग' कहलाती है। **'सम्यक् प्रज्ञायते ध्येयमस्मिन्निरोधविशेषरूपे योग इति सम्प्रज्ञातो योगः[3]।'** इस समाधि को योग की कोटि में गिना जाता है। यही प्रकट करने के लिए—'यस्त्वेकाग्रे चेतसि सद्भूतमर्थं प्रद्योतयति, क्षिणोति च क्लेशान्, कर्मबन्धनानि श्लथयति, निरोधमभिमुखं करोति, 'स सम्प्रज्ञातो योग' इत्याख्यायते'—भाष्य में स्पष्ट किया गया है। इस योग के चार भेद होते हैं—

१. वितर्कानुगत—जिसमें ध्येय विषय के स्थूल रूप का सम्प्रज्ञान होता है।

२. विचारानुगत—जिसमें ध्येय विषय के सूक्ष्म रूप का सम्प्रज्ञान होता है।

३. आनन्दानुगत—जिसमें ध्यानकारिणी बुद्धि से स्वतःस्फूर्त आनन्द का सम्प्रज्ञान होता है।

४. अस्मितानुगत—जिसमें बुद्धि और पुरुष की प्रतीयमान एकाकारता से प्रकट होने वाले उभय-स्वरूपविवेक का सम्प्रज्ञान होता है।

उपरिष्टात्—बाद में, आगे चलकर। प्रवेदयिष्यामः—बोधयिष्यामः, समझाएँगे, स्पष्ट रूप से बताएँगे।

चित्त की निरुद्धभूमि में सभी वृत्तियों का निरोध हो जाता है। एकाग्र भूमि में केवल राजस और तामस वृत्तियों का निरोध होता है और सात्त्विक वृत्ति

Scanned with CamScanner